प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण

केवलानन्द काण्डपाल

बच्चे का समाजीकरण एवं वयस्क जीवन की तैयारी सभी समाजों में अबाध रूप से जारी रहती है। इस क्रम में बच्चा अपने परिवार में, आस-पास के वयस्कों से सूचना, निर्देश, आदेश एवं संकेत जिस रूप में प्राप्त करता है, उसमें भाषा की अहम भूमिका होती है। यह कहना भी इतना ही सही है कि समाजीकरण के इस क्रम में बच्चा अपने परिवेश की 'भाषा-बोली'[1] के माध्यम से प्राप्त सूचना, निर्देश, आदेश एवं संकेतों से अर्थ निर्मित करता है और यह निर्मिति भाषा में ही होती है। लगभग तीन-चार वर्ष की उम्र में बच्चा इस समझ को अपनी परिवेशीय भाषा-बोली में कमोबेश भाषायी कुशलता के साथ अभिव्यक्त भी कर लेता है। व्यवहार में ऐसा क्यों होता है कि अपनी भाषा-बोली में कुशल बच्चा, विद्यालय आकर उस तरह से मुखर नहीं रह पाता जैसा कि वह विद्यालय आने से पूर्व था। भाषा सीखने की मजबूत नींव, अन्य विषयों को सीखने में एक बहुमूल्य निवेश है। भाषा शिक्षण केवल भाषा की कक्षा तक सीमित नहीं होता। प्राथमिक स्तर पर गणित एवं परिवेशीय अध्ययन की कक्षाएं भी एक तरह से भाषा की कक्षाएं होती हैं। ''किसी विषय को सीखने का मतलब है उसकी अवधारणाओं को सीखना, उसकी शब्दावली को सीखना, चर्चा करना और उसके बारे में लिखना।''[2] बच्चे के व्यक्तित्व और उसकी क्षमताओं को आकार देने में भाषा एक विशेष भूमिका निभाती है। प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण के संदर्भ में इसके गंभीर शैक्षणिक निहितार्थ हैं।

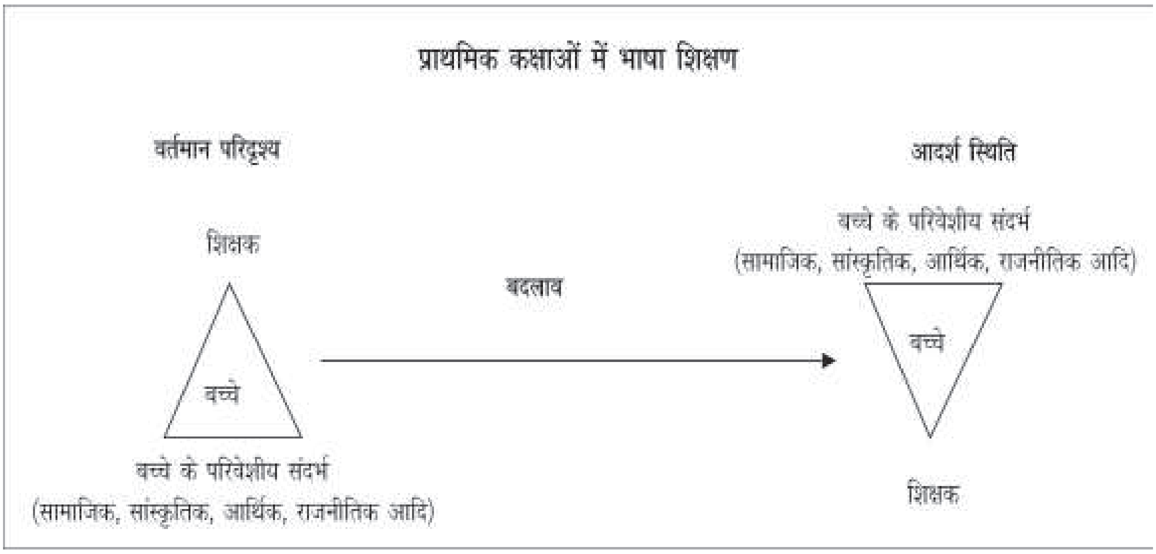
बहुचर्चित पुस्तक 'बच्चे असफल कैसे होते हैं' में जॉन होल्ट ने एक महत्वपूर्ण विमर्श बिन्दु की ओर संकेत किया है ''बच्चे स्कूलों में जिज्ञासा से भरे आते हैं, पर कुछ ही सालों में उनकी मुखर जिज्ञासा की मौत हो जाती है या कम से कम वह मौन तो हो ही जाती है।''[3] यह हमारी प्राथमिक कक्षाओं के भाषा शिक्षण के संदर्भ में बहुत सटीक बैठता है।

''प्रसिद्ध विचारक प्लूटो ने दो सहस्त्राब्दि पहले कहा था कि बच्चा दरअसल बड़ों के बीच में एक विदेशी की तरह होता है। जैसे आप किसी विदेशी से जिसकी भाषा आपको न आती हो, जब आप बात करते हैं तो आपको मालूम होता है कि मेरी कई बातें वो ठीक से समझेगा, कई नहीं समझेगा या गलत समझ जाएगा और जब वो कुछ बोलता है, अपनी भाषा में बोलता है और उसको हमारी भाषा नहीं आती तो हम भी उसकी बात पूरी नहीं समझ पाते, कुछ समझते हैं, कुछ नहीं समझते हैं और इस तरीके से जो आदान-प्रदान होता है वह अधूरा ही रह जाता है।''

बच्चा जब पांच-छह वर्ष की उम्र में विद्यालय आता है तो उसकी भाषा-बोली के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संदर्भ होते हैं। चूंकि बच्चे की भाषा का विकास इन संदर्भों के वृहद परिप्रेक्ष्य में होता है सो उसकी उत्सुकता एवं जिज्ञासा के क्षेत्र भी वही रहते हैं। बच्चा विद्यालय में प्रथम भाषा (हिन्दी भाषी क्षेत्र में प्रायः यह हिन्दी ही होती है।) सीखना प्रारम्भ करता है। इस प्रक्रिया में बच्चे के भाषायी संदर्भों

की जाने-अनजाने उपेक्षा की जाती है, विद्यालय की प्रथम भाषा सीखना बच्चे के लिए सहज प्रक्रिया नहीं रह जाती, अधिक स्पष्ट शब्दों में कहें तो उसके संदर्भों से जुड़ी न होने के कारण बच्चे के लिए कोई अर्थ निर्मित करने में मददगार नहीं होती। ''बच्चे की घरेलू भाषा(एं) स्कूल में शिक्षण का माध्यम होनी चाहिए।''[4]

वर्तमान में प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण के संदर्भ में जो परिदृश्य उभर कर सामने आता है और जो वास्तव में होना चाहिए, उसे निम्नलिखित रेखाचित्र से सहज ही समझा जा सकता है -



प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण का जो वर्तमान परिदृश्य नजर आता है, उसमें भाषा शिक्षण में अध्यापक एवं पाठ्य पुस्तकें मुख्य स्रोत के रूप में दिखलायी पड़ते हैं, बच्चे के परिवेशीय संदर्भों का संज्ञान प्रायः नहीं लिया जाता। बच्चे की भाषा उसके विशेष सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक संदर्भों में निर्मित होती है। ''याद रखें कि भाषाएं सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से बनती है।''[5] इसे एक उदाहरण से स्पष्ट करना उचित होगा। यदि किसी बच्चे के परिवेश की आर्थिकी कृषि पर निर्भर है तो उसकी भाषा, बोलचाल में ऐसे शब्दों की बहुतायत होती है जो कृषि कार्य से संबंधित होते हैं, इसी प्रकार यदि बच्चे को अपने परिवार, पास-पड़ोस में स्वतंत्रता, समानता एवं भाई-चारे के व्यवहारों के अनुभव प्राप्त होते हें तो उसकी भाषिक शब्दावली में इसकी झलक दिखलायी देगी, यदि पितृसत्तात्मक एवं लैंगिक विभेद के अनुभव उसे अपने परिवार एवं परिवेश में प्राप्त होगें तो विपरीत लिंगी से बातचीत में इसकी झलक दिखलाई पड़ेगी।

''भारतीय परंपरा में भाषा बोलना है लेखन नहीं (संज्ञान है महज बातचीत का माध्यम नहीं) और एक रचनावादी तंत्र है मात्र प्रस्तुतीकरण नहीं है। बोली गई भाषा की प्रकृति अस्थायी होती है और लिखित भाषा की तुलना में काफी तेजी से बदलती रहती है। इसलिए लिखित व बोली जाने वाली भाषा के बीच के फर्क को देखकर हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। यद्यपि बच्चे जन्मजात भाषिक क्षमता के साथ जन्म लेते हैं तथापि भाषाओं का सीखा जाना खास सामाजिक-सांस्कृतिक तथा राजनीतिक संदर्भों में होता है।''[6]

प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण में बच्चे के परिवेशीय संदर्भों की उपेक्षा की जाती है (चाहे यह जानबूझकर न किया गया हो।)। बच्चा अपने संदर्भों से कटकर भाषा सीखने का प्रयास करता है और इस क्रम में अर्थ निर्मित करने में कठिनाई महसूस करता है, अतः बच्चे के लिए भाषा सीखना एक चुनौती बन जाता है। इसके बजाय भाषा शिक्षण में बच्चे के परिवेशीय संदर्भ का संज्ञान लेने पर बच्चे के लिए यह प्रक्रिया सहज हो सकती है, इससे बच्चे को अपने लिए अर्थ निर्माण करने में आसानी हो जाती है। बच्चे के लिए भाषा सीखना रुचिपूर्ण हो जाता है। ''जो शब्द बच्चे

अपने अनुभव से जानते हैं, उनका नाम आते ही पूरा बिम्ब उनके मस्तिष्क में बन जाता है और वे इन शब्दों का अन्य प्रसंगों में भी इस्तेमाल कर पाते हैं।''[7]

इस क्रम में बच्चे की भाषा (यदि यह विद्यालय की भाषा से भिन्न है।) विद्यालय की भाषा तक पहुंचने में एक पुल की निर्मिति करती है। ''जब हम घर की भाषा और मातृभाषा की बात करते हैं तो इसके अन्र्तगत घर की भाषा, कुनबे की भाषा, आस-पड़ौस की भाषा आदि आ जाती है जो बच्चा स्वाभाविक रूप से अपने घर और समाज के वातावरण से ग्रहण कर लेता है।''[8] यहां पर बच्चे की मातृ भाषा एवं कक्षा की बहुभाषिकता का मुद्दा उभरता है, इसके बारे में इस आलेख में आगे विचार करेंगे। महत्वपूर्ण यह है कि विद्यालय की निर्देश की भाषा एवं बच्चे की अधिगम की भाषा में संगति होनी चाहिए।

चॉमस्की कहते है ''बच्चों में भाषा को सीखने की जन्मजात क्षमता होती है''। ''एक तीन साल के बच्चे से किसी भी ऐसे विषय पर अच्छी तरह बातचीत की जा सकती है जो उसके संज्ञानात्मक दायरे के अंदर आता हो। इससे यह पता चलता है कि सामान्यतः एक बच्चा एक सामान्य भाषायी जगत से संपर्क के अतिरिक्त अंतर्निहित भाषायी क्षमता के साथ ही जन्म लेता है'' (चॉम्स्की 1957, 1965, 1986, 1988, 1993)।[9] इसी क्षमता के कारण बच्चा 4-5 वर्ष की उम्र तक अपने परिवेश की भाषा में सुनने, सुनकर अर्थ ग्रहण करने, बोलने, अर्थपूर्ण बोलने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। शुरुआती दौर की कुछ कठिनाइयों के बाद 5 वर्ष की उम्र तक इसमें महारत भी हासिल कर लेता है। आश्चर्यजनक है कि यह सब कुछ बच्चे के विद्यालय आने से पूर्व ही घटित हो रहा होता है।

यह जानकारी कि व्यक्ति में एक जन्मजात भाषिक क्षमता होती है दो शिक्षाशास्त्रीय पहलू सामने रखती हैः पहला पर्याप्त अवसर मिले तो बच्चा नयी भाषाओं को भी आसानी से सीखेगा। दूसरा यद्यपि बच्चे जन्मजात भाषिक क्षमता के साथ जन्म लेते हैं तथापि भाषाओं का सीख पाना खास सामाजिक-सांस्कृतिक तथा राजनीतिक संदर्भों में होता है।

- बच्चे जब बोलते है, वह समग्रता में सोचते हुए बोलते हैं। मसलन, जब बच्चा यह कह रहा हो 'उसे घर में रहना अच्छा लगता है', तो घर की अवधारणा, अच्छा लगने की उसकी समझ, अच्छा लगने के कारण, दूसरी जगह अच्छा न लगने की वजह, चाहे अनगढ़ किस्म की क्यों न हो, बच्चे के मस्तिष्क में जरूर होती है। अगर किन्हीं करणों से ऐसा नहीं है तो बच्चा बोल नहीं रहा है वरन् रटे हुए को दोहरा रहा है।

- हर एक बच्चा, चाहे उसकी भाषा कोई भी क्यों न हो, भाषा का इस्तेमाल कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करता है। बच्चे की नजर में यह उद्देश्य है अपने आस-पास की दुनिया को जानना-समझना, इस जानने-समझने की प्रक्रिया से प्राप्त अनुभवों को शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करना। वस्तुतः अनुभवों को आत्मसात करने और व्यक्त करने के लिए शब्दों की जरूरत होती है, भाषा के माध्यम से यह प्रक्रिया पूर्ण होती है। जब बच्चे का कोई अनुभव पूर्ण हो चुका होता है तो इसके बाद बच्चा उसे साझा करने के लिए उत्सुक होता है और यह उसकी अपनी भाषा के माध्यम से ही होता है।

- कौनसी बात? किससे? किस प्रकार? और कहां? कहनी है, यह प्रत्येक बच्चा सीख जाता है, इसके बारे में बच्चे की खास सामाजिक-सांस्कृतिक तथा राजनीतिक समझ होती है और इसका आधार उसके परिवेशीय अनुभव होते हैं।

''जब बच्चे विद्यालय आते हैं तो विद्यालयी प्रक्रियाएं बच्चे की इन्द्रियों को बांधने का काम करती हैं। उसे कुछ बोलना नहीं है, महसूस नहीं करना है, जो महसूस कर रहा है उस अनुभव को साझा नहीं करना है, केवल वही बोलना है, जो अध्यापक चाहें और वही देखना व महसूस करना है जो अध्यापक चाहते हैं कि बच्चे देखें और महसूस करें।''[10] इसी परिप्रेक्ष्य में प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण के शिक्षणशास्त्रीय विमर्श के कुछ महत्वपूर्ण पहलू उभर कर सामने आते हैं।

- भाषा शिक्षण की ध्वनि (Phonetic) पद्धति (इसे वर्ण पद्यति भी कहा जाता है।) एवं समग्र पद्धति की विधाओं को लेकर एक लम्बा विमर्श रहा है।

- शिक्षकों में भाषा शिक्षण की समग्र (Holistic) पद्धति के बारे में सैद्धान्तिक सहमति होने के बावजूद प्राथमिक कक्षाओं में वर्ण से आरम्भ करके, मात्राएं, सरल शब्द, कठिन शब्द पढ़ने एवं लिखने की प्रवृत्ति विद्यालयों में अभी भी व्याप्त है।

- भाषा सीखने के यांत्रिक पक्ष पर अत्यधिक जोर देने के कारण जो प्रक्रिया अपनायी जाती है वह बच्चों में नीरसता, ऊब एवं तनाव पैदा करती है। वर्णों को ठीक आकार में लिखना, उच्चारण करना बच्चे के लिए कोई भाषायी संदर्भ निर्मित नहीं करते, बच्चा इससे कोई अर्थ निर्मित करने में असफल रहता है और आश्चर्यजनक रूप से भाषा विषय में भी बच्चे रटने की यांत्रिक प्रणाली अपनाने लगते हैं।

''बच्चा अपने आप अपने माता-पिता की भाषा सीख लेता है परन्तु हम व्यस्कों के लिए नई भाषा सीखना बहुत बड़ी भौतिक उपलब्धि होती है। बच्चे को कोई सिखाता नहीं परन्तु वह क्रिया, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि का बिल्कुल सही प्रयोग कर लेता है।'' - मारिया मॉन्टेसरी

वस्तुतः वर्ण का कोई अर्थ नहीं होता है वह केवल निरपेक्ष ध्वनि होती है, जहां तक लिखने का प्रश्न है बच्चे के लिए वर्ण एक आकृति मात्र होती है, बहुत बार एकदम जटिल भी। इस तरह के भाषा शिक्षण से क्या-क्या हानिकारक परिणाम हो सकते हैं? इस पर सटीक राय देने का अधिकार क्षेत्र भाषाविदों का है। यहां पर मैं यह जरूर उल्लेख करना चाहता हूं कि विद्यालय अनुश्रवण/विजिट के दौरान बहुत बार जब बच्चों से कुछ शब्दों को पढ़ने का आग्रह करता हूं तो बच्चे कुछ इस तरह से शब्दों को पढ़ने का प्रयास करते हैं-

कमल-कबूतर वाला क, मछली वाला म, लट्टू वाला ल, इसी शब्द को उलट-पलट कर कलम, मलक को पढ़ने का आग्रह करने पर पुनः वही प्रक्रिया अपनाते हैं। यद्यपि सभी बच्चे ऐसा नहीं करते परन्तु इस तरह से पढ़ने की कोशिश करने वाले बच्चों की संख्या सारभूत रूप से ज्यादा होती है। इससे अनुमान लगाने में कठिनाई नहीं है कि कुछ तो गड़बड़ हो रही है भाषा शिक्षण में।

वस्तुतः प्राथमिक स्तर पर भाषा शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य पाठ्यपुस्तकों की पढ़ाई करना मात्र नहीं है वरन् भाषा से जुड़े कौशलों एवं क्षमताओं का विकास करना है। ये कौशल एवं क्षमताएं हैं- सुनना, बोलना, पढ़ना एवं लिखना। बच्चों में इनका विकास एक निर्धारित क्रम में होने की मान्यता है परन्तु इन कौशलों एवं क्षमताओं के विकास क्रम के मध्य एक विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती और यह बहुत जटिल काम है। बच्चा सुनने के साथ-साथ बोलना, बोलने के साथ-साथ पढ़ना, सुनने-बोलने-पढ़ने के साथ लिखने का कौशल एवं क्षमताएं हासिल करता जाता है। बच्चे के परिवेशीय अनुभव एवं क्षमताओं के आलोक में एक भाषाई कौशल एवं क्षमता के साथ दूसरे भाषायी कौशल एवं क्षमता को अर्जित करने की गति में भिन्नता जरूर हो सकती है परन्तु भाषा शिक्षाविद मानते हैं कि एक सामान्य बच्चे में भाषायी कौशल एवं क्षमताओं के विकास की यह यात्रा सुनने से शुरू होकर पढ़ने-लिखने के भाषायी कौशल एवं क्षमताओं तक पहुंचती है।

भाषायी कौशलों व क्षमताओं के शिक्षणशास्त्रीय पहलुओं पर विचार करने से पूर्व शिक्षक के नजरिए से भाषा व्यवहार के पक्षों पर विचार कर लेना समीचीन होगा। यह इसलिए भी जरूरी हो जाता है ताकि वे भाषा व्यवहार को ध्यान में रखते हुए बच्चों में भाषा संबंधी कौशलों एवं क्षमताओं के विकास के लिए उर्वर अवसर सृजित कर सकें। इससे भाषायी कौशलों एवं क्षमताओं की प्रकृति एवं उनके आपसी संबंधों को समझने में आसानी भी होगी। भाषा व्यवहार के दो प्रमुख पक्ष हैं- यांत्रिक और मानसिक। यांत्रिक पक्ष में ध्वनि, लिपि, व्याकरणिक पद्धति मुख्य रूप से आते हैं। मानसिक पक्ष में वाक्य रचना, विषयवस्तु, वर्ण, शब्द की पहचान, संयोजन, उपयुक्त तरीके का चयन, अनुमान आदि मुख्य रूप से शामिल किए जा सकते हैं। ''मानसिक दृष्टि से सुनना और पढ़ना लगभग समान हैं।''[11] दोनों का उद्देश्य अर्थ ग्रहण करना होता है, श्रोता से अपेक्षा की जाती है कि वह सुनी हुई विषयवस्तु को समझ सके तथा पाठक से

उम्मीद की जाती है कि वह पढ़ कर अर्थ ग्रहण कर सके। यद्यपि पढ़ने में यांत्रिक पक्ष भी सक्रिय हो जाता है, पढ़ने के क्रम में लिखे हुए वर्ण, शब्द, शब्द-समूह, विराम चिह्नों हेतु उपयुक्त ध्वनियों का चयन भी करना होता है।

इसी प्रकार भाषा के बोलने एवं लिखने के कैशलों एवं क्षमताओं में संगति दिखलायी देती है। दोनों में वाक्य रचना करने हेतु उपयुक्त वर्ण, शब्द, शब्द-समूहों का चयन एवं संयोजन जरूरी होता है। यह मानसिक पक्ष का महत्वपूर्ण भाग होता है। बोलने के लिए वर्ण, शब्द, शब्द-समूहों हेतु ध्वनियों के चयन की जरूरत होती है, इससे भाषा का यांत्रिक पक्ष सक्रिय हो जाता है। वस्तुतः भाषा व्यवहार का यांत्रिक पक्ष जिसमें वर्ण, ध्वनि, लिपि निहित है, भाषा के प्रारूप को रचने में मदद करता है वहीं मानसिक पक्ष जिसमें ध्वनि एवं शब्द चयन, भाषा-शैली, संयोजन भाषा के रचनात्मक पहलू से संबंधित है। भाषा के व्यवहार पक्ष का यह विश्लेषण भाषायी कौशलों एवं क्षमताओं की परस्पर संबद्धता एवं संगति के बारे में महत्वपूर्ण अन्र्तदृष्टि देता है। इसके आलोक में अब भाषा कौशलों के शिक्षणशास्त्रीय पहलुओं पर विचार करना उचित होगा।

सुनना एवं बोलना- शरीर विज्ञानियों का निश्चित अभिमत है कि बोलने की क्षमता के विकास के लिए सुनने की क्षमता का विकसित होना जरूरी है। ये दोनो क्षमताएं एक-दूसरे से गहन रूप से संबद्ध हैं। 5 वर्ष की उम्र में बच्चा जब विद्यालय में आता है तो सुनने एवं बोलने की विकसित क्षमता के साथ आता है। बहुत संभव है कि बच्चे की यह भाषायी क्षमता उसकी परिवेशीय भाषा-बोली के संदर्भ में हो। बच्चा, जो कुछ भी बोला जा रहा है, उसे सुनते हुए अपनी समझ, विचार, स्कीमा, अवधारणा बना रहा होता है। बहुत बार संभव है कि सुनी हुई बात को जांचने परखने के लिए कुछ पड़ताल, पुष्टि, परीक्षण जैसा भी कुछ कर लेता हो परन्तु इतना निश्चित है कि उसको संबोधित जो भी कहा जाता है, निर्देश दिए जाते हैं, सूचना दी जाती है, उनका ठीक-ठीक अर्थ समझता है अर्थात वह सुनकर समझता है या समझते हुए सुनता है। बच्चे के परिवेश की भाषा एवं विद्यालय की भाषा में फर्क होने पर बच्चे के सुनने एवं बोलने की भाषायी क्षमताओं के विकास में बाधा पड़ती है। निर्देश की भाषा एवं अधिगम की भाषा का अन्तर बच्चे को उलझन में डाल देता है। यहां पर मैं एक मजेदार अनुभव साझा करना चाहूंगा। एक विद्यालय में अनुश्रवण के दौरान मैने एक बच्चे से बाहर से एक पत्थर लाने को कहा। दरअसल खिड़की के दरवाजे के बार-बार बन्द होने से रोकने के लिए उसे पत्थर लगा कर रोकने का मेरा मंतव्य था। बच्चा थोड़ी देर में खाली हाथ वापस आ गया। मैं स्वयं बाहर से एक उपयुक्त पत्थर ले आया, बच्चा बड़ी सहजता से बोला यह तो ‘ढुंग’ है, दरअसल कुमांउनी भाषा में पत्थर को ‘ढुंग’ कहा जाता है। मैं कुमांउनी जानता हूं सो मामला जल्दी ही सुलट गया परन्तु एक बारगी बच्चा तो उलझन में पड़ ही गया था।

विद्यालयी निर्देश की भाषा भिन्न होने पर शिक्षण शास्त्रीय दृष्टि से दो मुद्दे सामने आते हैं, पहला- बच्चे की भाषा को भाषा शिक्षण में समुचित स्थान देना, दूसरा-कक्षा की बहुभाषिकता को एक समृद्ध संसाधन के रूप में व्यवहृत करना। मुझे लगता है कि बहुभाषिकता के अन्र्तगत बच्चे की भाषा का मुद्दा भी आ जाता है। भाषा सुनने एवं बोलने की क्षमताओं के विकास के शुरुआती दौर से ही इस पर काम करने की जरूरत होती है। बच्चों के सुनने-बोलने की क्षमताओं के समुचित विकास हेतु कक्षा की बहुभाषिकता को एक समृद्ध संसाधन के रूप में उपयोग में लाने की जरूरत है। बच्चे की भाषा के परिवेशीय संदर्भों का गहनता से विश्लेषण करने की आवश्यकता है। बच्चे पर एकदम शुरुआत से ही विद्यालय की भाषा में बोलने का दवाब बच्चे के बोलने के अवसरों को सीमित कर देता हैं इसका एक बड़ा नुकसान यह होता है कि बच्चे की परिवेशीय भाषा से विद्यालय की भाषा के मध्य सेतु निर्माण के अवसर खत्म हो जाते हैं।

इसके लिए बहुत जरूरी है कि बच्चों को बोलने के प्रचुर अवसर मिलें, अपने परिवेश के बारे में बातचीत, अवलोकनों पर बातचीत, प्रार्थना सभा, बालसभा, खेलकूद आदि अवसरों पर अपनी भाषा में बातचीत के अवसर बच्चों को मिलें। शिक्षक की कुशलता है कि वह किस प्रकार से परिवेशीय भाषा एवं विद्यालय की भाषा में सामंजस्य बिठाता है। इसके लिए बच्चों को बातचीत के अधिक से अधिक अवसर देने की जरूरत है, बच्चों को, अपने परिवेश के बारे में, स्कूली

अनुभवों के बारे में, तस्वीरों/चित्रों पर बातचीत, कहानी एवं कविताएं सुनाना और उन पर बातचीत, नाटक एवं अभिनय करके उस पर बातचीत, अपने आस-पास की चीजों पर गौर करना और उन पर बातचीत, आपस में एवं लोगों से बातचीत आदि के ऐसे अनेक अवसर सृजित करने होंगे, जिससे बच्चों के बोलने एवं सुनने के कौशल में परिपक्वता आ जाये।

''बहुभाषिकता- भारत की भाषिक विविधता एक जटिल चुनौती तो पेश करती ही है लेकिन यह कई प्रकार से अवसर भी देती है।''[12] कक्षा की बहुभाषिकता बच्चों की परिवेशीय भाषा-बोली, कई उप-बोलियों से जुड़ी होती है। अतः बच्चे के सुनने-बोलने की भाषायी क्षमता की विकास यात्रा बच्चे की अपनी भाषा-बोली से होनी चाहिए, अगले पड़ाव पर विद्यालय की प्रथम भाषा में जाने का लक्ष्य होना चाहिए। बच्चे की भाषा-बोली से हिन्दी भाषा (या विद्यालय की प्रथम भाषा) तक की यात्रा में दोनों ओर आवाजाही की छूट देनी होगी। बच्चे अपनी मातृभाषा से भावनात्मक रूप से मजबूती से जुड़े हाते हैं। यदि भावों को अभिव्यक्त करना भाषा का एक प्रमुख सरोकार है तो फिर इसकी शुरुआत भी इसी संदर्भ बिन्दु से करनी होगी। विद्यालय में बच्चा सुरक्षित (बच्चे को हंसी उड़ाये जाने का भय नहीं है तो) महसूस करता है तो वह अपने घर-परिवेश की भाषा में बोलने में सहजता अनुभव करता है, बातचीत करता है, सुनता है, सुनकर अर्थ ग्रहण करता है। यदि इसी प्रस्थान बिन्दु पर बच्चे के प्रयास की उपेक्षा कर दी जाए, तो वह कक्षा में बोलना कम कर देगा ओर धीरे-धीरे बन्द ही कर देगा। इस क्रम में विद्यालय की भाषा को सीख ही लेगा इसके कोई ठोस साक्ष्य भी नहीं हैं। बहुभाषी कक्षा भाषा की शुरुआती क्षमताओं (विशेषकर बालने-सुनने की क्षमताओं) के विकास हेतु एक समृद्ध संसाधन है। यदि गहनता से विचार करें तो हम मूलतः बहुभाषिक होने के करीब ही हैं। अपनी बातचीत का प्रत्यास्मरण करके हम महसूस कर सकते है कि विभिन्न भाषाओं के शब्दों, वाक्यों को अपनी बोलचाल में शामिल करके हमने अपनी बोलचाल की भाषा को समृद्ध ही किया है। कक्षा की बहुभाषिकता के बारे में स्पष्ट समझ बच्चे की मातृभाषा से विद्यालयी भाषा में कब और किस प्रकार आवाजाही करनी है? के बारे में निर्णय लेने में अध्यापक को मदद करती है। बच्चे की अपनी भाषा के शब्द कक्षा की भाषा को समृद्ध बनाते हैं, बच्चे में अपनी भाषा के प्रति हीनता का भाव नहीं जागता है। बच्चे के लिए अपनी भाषा में अर्थग्रहण करने में सहजता रहती है। कक्षा में बहुभाषिकता बच्चे के परिवेशीय संदर्भो (सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि) को समझने में बहुत कारगर है, कक्षा की विविधता के प्रति सम्मान एवं बच्चों की विविध आवश्यकता को संबोधित करने का मूल्य विकसित करने में मददगार होती है।

''बहुभाषिकता जो बच्चे की अस्मिता का निर्माण करती है और जो भारत में भाषा परिदृश्य का विशिष्ट लक्षण है, उसका संसाधन के रूप में उपयोग, कक्षा की कार्यनीति का हिस्सा बनाना तथा इसे लक्ष्य के रूप में रखना, रचनात्मक भाषा शिक्षक का कार्य है। यह केवल उपलब्ध संसाधन का बेहतर इस्तेमाल नहीं है बल्कि इससे यह भी सुनिश्चित हो सकता है कि हर बच्चा स्वीकार्य एवं संरक्षित महसूस करे और भाषिक पृष्ठभूमि के आधार पर किसी को पीछे न छोड़ा जाये।''[13]

पढ़ना एवं लिखना- मनो-शिक्षाविद श्री विलियम हल का मानना है कि यदि हम बच्चों को बोलना सिखाते तो वे शायद कभी बोलना नहीं सीखते। बच्चों को पढ़ना सिखाने के संदर्भ में यह बात काफी हद तक सही भी लगती है। विद्यालयों में बच्चों के पढ़ने की चिन्ताजनक स्थिति को देखकर महसूस होता है कि यदि वयस्कों की दखलंदाजी नहीं होती तो शायद पढ़ना बच्चों के लिए सुखद अनुभव होता। असल में तो विद्यालयों में पढ़ना बच्चों कें लिए एक कष्टप्रद प्रक्रिया बन गयी है। जहां साल-दर-साल एक अर्थहीन, यांत्रिक एवं उबाऊ प्रक्रिया से गुजरने के बाद भी अधिकांश बच्चे समझकर पढ़ने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं।

परम्परागत समझ हमें यह बताती है कि पढ़ना और लिखना दो भिन्न कौशल हैं। इसमें यह विचार शामिल है कि पढ़ना ग्राही कौशल है और लिखना उत्पादी कौशल है तथा पढ़ने एवं लिखने का क्रमबद्ध तरीके से विकास होता है।

आधुनिक समझ हमें बताती है कि पढ़ने एवं लिखने की, दोनों ही प्रक्रियाओं में कई ऐसी समानताएं हैं जो एक दूसरे की पूरक हैं। पढ़ते समय पाठक अर्थ निर्मित करता चलता है, इसी प्रकार लिखते समय भी लिखने वाला अर्थ निर्माण करता चलता है। पढ़ने के क्रम में हम कई बार अपने अर्थ को संशोधित करते हैं, उसे दुबारा पढ़ने का प्रयास करते हैं। इसी तरह लिखते समय हम बहुत बार अपने लिखे हुए को संशोधित करते हैं। पढ़ने एवं लिखने की दोनो ही प्रक्रियाओं के अंत में हम एक अंतिम अर्थ का निर्माण करते हैं।

पढ़ना केवल लिपि या लिपिबद्ध भाषा को भेदना (Decoding) मात्र नहीं है बल्कि छपी हुई सामग्री से कई स्तरों पर और उसके कई पहलुओं से अन्तर्क्रिया करना भी है जिससे बच्चा पढ़ने के अनुभव से अपने लिए अर्थ निर्मित कर सके। पढ़ने के लिए आवश्यक है- लिपि (अक्षर ध्वनि) से परिचय, भाषा एवं भाषा की वाक्य संरचना की समझ, विषय वस्तु की समझ, अनुमान लगाने का कौशल (क्या हो रहा है? क्या घटित होगा?), पढ़ते समय पाठ एवं अपने स्कीमा में सामंजस्य बिठाने का हुनर। इनके समग्र आलोक में बच्चा पढ़ी हुई सामग्री को समझ पाता है ओर अपने लिए अर्थ निर्मित करता है। जिन शब्दों को बच्चे अपने अनुभव से जानते हैं, उनके सामने आने पर एक पूरा बिम्ब बच्चे के दिमाग में बन जाता है, पढ़ने में ऐसी मानसिक स्थितियों का खास महत्व है। इस प्रकार पढ़ना एकाकी प्रक्रिया नहीं है, इसमें कई प्रक्रियाएं शामिल है। बच्चों के पढ़ने की शुरुआत किताब से कहानी पढ़ना, कविता गाते हुए पढ़ना, बच्चों द्वारा कविता बनाना, कहानी बनाना से की जा सकती है, इस प्रक्रिया में अध्यापक, बच्चों की कविता, गीत, कहानी को लिखने का काम कर सकते हैं, लिखते हुए पढ़ सकते हैं, इस प्रकार की पठन सामग्री तैयार कर सकते है। चित्र पठन, अधूरी कहानी को पूर्ण करना आदि गतिविधियां शुरुआती दौर में उपयोगी हो सकती है। बच्चों के लिए पढ़ने का कोना, विद्यालय के बुलेटिन बोर्ड, सूचना पट्ट में सरल वाक्यों में लिखी गयी सूचना, आज की बात (Morning Message) में लिखे गये संदेश, दीवार पत्रिकाएं, बाल अखबार आदि लिखित सामग्री से सज्जित कक्षाएं बच्चों में पठन उत्सुकता विकसित करने में बहुत अहम भूमिका निभाती हैं और बच्चों के पठन कौशल के विकास में सहायक सिद्ध होती हैं।

पठन शुरू करने का कारगर उपाय-

- कक्षा में छपी हुई सामग्री की बहुतायत हो। संकेतों, चार्ट, कार्य संबंधी सूचना आदि उसमें लगे हों ताकि विभिन्न अक्षरों की ध्वनियां सीखने के साथ-साथ लिखित सेकेतों की पहचान भी कर सकें।
- कल्पनाशील निवेशों की जरूरत है, जिससे एक योग्य पाठक हाव-भाव से पढ़े आदि।
- विद्यार्थियों द्वारा बताये गये अनुभवों का लेखन और उसके द्वारा लिखित पाठ का वाचन।
- अतिरिक्त सामग्री का पठनः- कहानियां, कविता आदि।
- प्रथम पीढ़ी के विद्यार्थियों को इसका अवसर दिया जाना चाहिए कि वे अपने पाठ स्वयं तैयार करें और स्वयं द्वारा चुने हुए पाठों का कक्षा में योगदान करें।[14]

''पठन को भाषा शिक्षण का महत्वपूर्ण अवयव माना जाता है, स्कूली पाठ्यक्रम सूचनाओं एवं रटन्त पाठों से इतने भरे होते हैं कि सिर्फ पढ़ने के लिए पढ़ने का आनन्द कहीं दूर छूट जाता है। पढ़ने की संस्कृति के विकास के क्रम में वैयक्तिक पठन को प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है और शिक्षकों को इस संस्कृति का हिस्सा बनकर स्वयं उदाहरण पेश करना चाहिये।''[15]

लिखना मनो-शारीरिक समन्वय का मामला है। कलम को एक विशेष तरीके से पकड़कर किसी वर्ण की आकृति को हूबहू उतारना बच्चे के लिए एक कष्टपूर्ण प्रक्रिया बन जाती है। ऐसा नहीं है कि बच्चा कलम/पेंसिल से कोई रिश्ता नहीं रखना चाहता। वह तो दीवारों पर, जमीन पर, कागज पर अपनी समझ के अनुसार कुछ न कुछ बनाता रहता है, उसके बारे में बताता है, बनाने में आनन्द का अनुभव भी करता है। ''बच्चों की आड़ी-तिरछी लकीरें पढ़ने-लिखने

की प्रक्रिया का एक बेहद जरूरी हिस्सा हैं। अगर हम इन आड़ी-तिरछी लकीरों को नहीं सराहेंगे तो बच्चे पढ़ने-लिखने की यांत्रिकता में ही उलझकर रह जाएंगे।''[16] हमारे विद्यालयों में बच्चों को लिखना एक यांत्रिक कौशल की तरह से सिखाया जाता है। ''शुरुआत में ही अक्षरों/वर्णों की आकृतियों को दर्जनों बार नकल करने के उपक्रम में बच्चे का बहुत सारा समय निकल जाता है और इस अवधि में लिखना सीखने का कोई भी उद्देश्य बच्चे की समझ में नहीं आता है।''[17] अब यदि इस स्थिति से उबरना चाहते हें तो बच्चे को इस बात से मुतमईन करना होगा कि लिखना बातचीत का विस्तार ही है, अर्मूत प्रतीकों के जरिये अपनी बात कहना ही लिखना है। आरम्भिक वर्षों में लिखने की क्षमता का विकास बच्चे की बोलने, सुनने एवं पढ़ने की क्षमता की संगति में होना चाहिये।

''शिक्षकों का जोर इस बात पर होता है कि बच्चे सही तरीके से लिखें। लिखने के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण नहीं माना जाता । ठीक जैसे समय से पहले सही उच्चारण का बोझ बच्चे के खुलकर अपनी भाषा में बात करने की क्षमता को कुंठित करता है, उसी तरह मशीनी रूप से शुद्ध लिखने की मांग विचारों को अभिव्यक्त करने में बाधा बनती है।''[18]

शुरुआत में लेखन कौशल के विकास के लिए ड्राईंग, रंगीन चित्र बनाने के अवसर देना उपयुक्त होगा। वर्ण में कोई अर्थ नहीं होता, केवल ध्वनि होती है और इन निरपेक्ष ध्वनियों का बच्चे के लिए कोई विशेष अर्थ नहीं होता। वर्ण लिखना सिखाने के लिए भी किसी एक वर्ण से शुरू होने वाले शब्दों की सूची में से शुरुआती वर्ण को पहचानकर इसकी ध्वनि को समझने से बच्चे को मदद मिल सकेगी। इसे एक उदाहरण से स्पष्ट करना जरूरी है। 'क' वर्ण से शुरू होने वाले शब्दों की एक सूची जैसे-कबूतर, कलम, कमल, कठिन, कहानी, कविता, कसरत, कद्दू, ककड़ी आदि-आदि प्रस्तुत करके इनको बार-बार दोहराने से बच्चों को क वर्ण के उच्चारण का एवं इसमें निहित ध्वनि का अनुभव मिलेगा, कुछ अभ्यास के बाद बच्चा शुरू के वर्ण को पहचानना सीख लेगा, इसके बाद 'क' वर्ण को लिखने में बच्चे को आसानी होगी। यहां पर ध्यान में रखना होगा कि शब्दों का चयन बच्चे के परिचित परिवेश से किया जाय तो शब्द बच्चे के लिए अर्थपूर्ण होंगे सो लिखना उसके लिए मजेदार अनुभव हो जायेगा। इस प्रकार जब अध्यापक शब्द एवं अर्थों के बीच कई मजबूत पुल बना ले तो वर्णमाला का परिचय बच्चों के लिए बहुत उपयोगी हो सकता है। लिखने की शुरुआत के बाद शब्दों को तीन-चार तरीके से लिखकर सही तरीका पहचानने के लिए बच्चों को प्रेरित करने से बच्चे शब्दों को लिखने में रुचि लेने लगेंगे। अब लिखने के अगले क्रम में जाया जा सकता है। इससे पहले बच्चों में यह समझ पुख्ता करनी होगी कि लिखते समय हमारे मन में एक निश्चित व्यक्ति होना चाहिए, जिसके लिए हम लिखना चाहते हैं और दूसरा लिखने का हमारे पास कोई निश्चित उद्देश्य भी होना चाहिये। लिखना एक तरह से लिखित बातचीत है, इसलिए यह जानना बहुत जरूरी है कि किससे बात करनी है? कैसे बात करनी है? यह लिखना सीखने के लिए बहुत उपयोगी साबित होगा। इस बारे में पक्की समझ हो जाने पर अधूरी कहानी को पूरा करना, कविता को आगे बढ़ाना, कहानी लिखना, कविता लिखना, पत्र लिखना, अवलोकन अनुभवों को लिखना, किसी देखे हुए मेले, उत्सव के बारे में लिखना जैसी उत्तरोत्तर उच्च लेखन क्षमताओं की ओर बढ़ा जा सकता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि लेखन उद्देश्यपूर्ण हो, बच्चे के लिए अर्थपूर्ण हो, मात्र यांत्रिक प्रक्रिया से बच्चों में उब, तनाव एवं चिन्ता पैदा न करे।

प्राथमिक कक्षाओं में भाषा शिक्षण के शिक्षणशास्त्र के नजरिए में मूलभूत बदलाव (इस आलेख के शुरुआती हिस्से में रेखाचित्र के माध्यम से इसे प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।) हेतु अध्यापक की क्षमताओं का विकास करने की आवश्यकता है। इसके लिए अध्यापक के भाषा शिक्षण व्यवहार हेतु आवश्यक ज्ञान, क्षमता एवं मूल्यों को संबोधित करना होगा। इसमें ज्ञान पक्ष के अर्न्तगत, बच्चे के संदर्भ में भाषा क्या है? भाषा सीखने के उद्देश्य क्या है? इसके लिए उपयुक्त शिक्षणशास्त्र जैसे मुद्दों पर सैद्धान्तिक समझ का विकास करना होगा। क्षमता के अर्न्तगत भाषा संबंधी क्षमताओं (सुनना, बोलना, पढ़ना एवं लिखना) के विकास हेतु उपयुक्त शिक्षण विधियों, गतिविधियों के नियोजन एवं क्रियान्वयन क्षमता का विकास, बहुभाषिकता को एक समृद्ध संसाधन के रूप में उपयोग में लाने की क्षमता का विकास करना होगा। मूल्य विकास के लिए बच्चे की भाषा के प्रति संवेदनशीलता, बच्चे की भाषायी

क्षमताओं संबंधी जरूरतों को संबोधित करने की इच्छाशक्ति को बढ़ाने के प्रयास करने होंगे। भाषा की पाठ्यपुस्तक के पाठों को भाषायी क्षमताओं के आलोक में देखने का नजरिया विकसित करना होगा। अध्यापक में यह अन्तर्दृष्टि विकसित होने पर, अध्यापक पाठ्यपुस्तक से बाहर निकलने का साहस जुटा सकेंगे।

वस्तुतः भाषा के नाम पर अध्यापक कोई एकदम नयी चीज नहीं सिखा सकता है, वह ऐसी परिस्थितियां सृजित कर सकता है, जिसमें बच्चे पहले से सीखी हुई भाषायी क्षमताओं सुनना व बोलना का विकास कर सके, नई क्षमता जैसे पढ़ना एवं लिखना सीख सके। बच्चों में अवलोकन क्षमता का विकास कर सके। बच्चों के पढ़ने एवं लिखने के कौशलों की प्रगति का सतत आंकलन, एवं बच्चों को एकदम सही समय पर फीडबैक देकर अध्यापक भाषा सीखने हेतु उपयुक्त वातावरण सृजित कर सकते हैं।

प्राथमिक शिक्षा से आगे की शिक्षा का बहाना लेकर बच्चे की आजादी एवं सहजता पर प्रतिबंध लगाना उचित नहीं है। ऐसे प्रतिबंध मुखर होकर अपनी बात कहने एवं लिखने से बच्चों को रोकेंगे। हमारे सामाजिक परिवेश में बच्चों पर बहुत सारी बंदिशें पहले से ही हैं, विशेषकर लड़कियों पर। ये प्रतिबंध भाषा शिक्षण ही नहीं समूची शिक्षा के उद्देश्य को कुंद कर देंगे। भाषा शिक्षण के तौर तरीकों में बदलाव से इनसे उबरने की उम्मीद जरूर की जा सकती है। ◆

लेखक परिचय : उत्तराखण्ड के राजकीय माध्यमिक विद्यालयों एवं जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान में शिक्षक एवं प्रशिक्षक के रूप में लम्बा अनुभव। वर्तमान में बागेश्वर के अति दुर्गम राजकीय माध्यमिक विद्यालय में प्राचार्य। बच्चों के सीखने-सिखाने के उपक्रम को जानने-समझने में रुचि तथा शिक्षा के अधिकार के बारे में समुदाय में जागरूकता एवं चेतना के सरोकारों के प्रति प्रतिबद्ध।

संपर्क : 94103 05524; **ईमेल :** kandpal_kan@rediffmail.com

संदर्भ

1. यहां बच्चे की घर/परिवेश की भाषा के लिए भाषा-बोली शब्दावली को व्यवहृत किया गया है। उत्तराखण्ड में कुमाउंनी सहित कई बोलियां उप-बोलियां हैं, इन बोलियों एवं उप-बोलियों को भाषा मानने में कतिपय भाषाविदों को आपत्ति रही है कि इनका कोई विधि सम्मत व्याकरण नहीं है अतः इसे बोली (Dialect) मानते हैं यद्धपि कुछ भाषाविद् इनको भाषा के समकक्ष मानते हैं। यही परिदृश्य भारत में अन्य क्षेत्रों के बारे में भी समीचीन है।

2. पृष्ठ 43, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, प्रथम संस्करण, मई 2006, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

3. पृष्ठ 251, बच्चे असफल कैसे होते है - जॉन होल्ट , हिन्दी अनुवादः पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा, 1993, एकलव्य प्रकाशन, ई0-7/453 एच. आई. जी., अरेरा कालोनी, भोपाल-462016, म.प्र.।

4. पृष्ठ 42, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, प्रथम संस्करण, मई 2006, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

5. पृष्ठ 41, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, प्रथम संस्करण, मई 2006, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

6. पृष्ठ 2, भारतीय भाषाओं का शिक्षण- राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र 1.3, पहला संस्करण 2009, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016 ISBN 978-81-7450-961-7

7. पृष्ठ 1, बच्चे की भाषा और अध्यापकः एक निर्देशिका-कृष्ण कुमार, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पहला संस्करण 1996, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन 5, इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II, बसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 ISBN 978-81-237-1817-0

8. पृष्ठ 41, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, प्रथम संस्करण, मई 2006, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

9. चॉम्स्की, एन. 1957, सिनटेक्टिक स्ट्रक्चर्स, दी हेगः मौटेन कं., चॉम्स्की, एन. 1959, रिव्यू ऑफ़ स्किनर्स वर्बल बिहेवियर लैंग्वेजेस 35.1.26-58, चॉम्स्की, एन. 1972, लैंग्वेज एंड माइंड, न्यूयार्वफः हारकोर्ट ब्रास जोवानोविच, चॉम्स्की, एन. 1996, पॉवर्स एंड प्रोस्पेक्ट्सः रिफ़्फलेक्शंस ऑन ह्यूमन नेचर एंड द सोशल आर्डर, दिल्लीः माध्यम बुक्स, चॉम्स्की, एन. 1965, आस्पेक्ट्स ऑफ़्फ द थ्योरी ऑफ़्फ सिनटेक्स, कैंब्रिज : एम. आई. टी. प्रेस, चॉम्स्की, एन. 1986, नॉलेज ऑफ़्फ लैंग्वेज, न्यूयाक्र , चॉम्स्की, एन. 1988, लैंग्वेज एंड प्रॉब्लम्स ऑफ़्फ नॉलेज, वैंफब्रिज, मासः एम. आई. टी.।

10. पृष्ठ 250, मेरी ग्रामीण शाला की डायरी-जूलिया वेबर गॉर्डन, अनुवादक- पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा, 2010, एकलव्य, ई.-10, बी. डी. ए. कॉलोनी, शंकर नगर, शिवाजी नगर, भोपाल-462016, म.प्र.। ISBN 978-81-89976-68-2

11. पृष्ठ 32, भाषा-संप्राप्ति, निदान और उपचार-कृष्ण गोपाल रस्तोगी, मई 1997, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

12. पृष्ठ 41, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, प्रथम संस्करण, मई 2006, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

13. पृष्ठ 41, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, प्रथम संस्करण, मई 2006, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

14. पृष्ठ 46, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, प्रथम संस्करण, मई 2006, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

15. पृष्ठ 47, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, प्रथम संस्करण, मई 2006, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

16. पृष्ठ 6, लिखने की शुरुआत एक संवाद-2015, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

17. पृष्ठ 49, बच्चे की भाषा और अध्यापक : एक निर्देशिका-कृष्ण कुमार, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, पहला संस्करण 1996, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन 5, इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II, बसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 ISBN 978-81-237-1817-0

18. पृष्ठ 48, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, प्रथम संस्करण, मई 2006, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016